एक सपने को टालते रहने से क्या होता है?

"यह अंधेरा
कालिख की तरह
स्मृतियों पर छा जाना चाहता है।
यह सपनों की ज़मीन को
बंजर बना देना चाहता है।
यह उम्मीदों के अंखुवों को
कुतर जाना चाहता है।
इसलिए जागते रहना है
स्मृतियों की स्लेट को पोंछते रहना है।"

(शशि प्रकाश)

विस्मृति के विरुद्ध संघर्ष भी सामाजिक क्रान्ति की लड़ाई का एक अहम मोर्चा है। कभी-कभी, क्रान्तियों की पराजय या संकट के दौरों में किसी भी देश का मेहनतकश अवाम अपनी परम्परा को, इतिहास को, अपने नायकों और उनके विचारों को भुलाकर अपने स्वप्नों से लक्ष्यों-आदर्शों से भी विमुख हो जाता है, उन्हें भी भुला देता है और उसे गतिरोध की स्थिति जकड़ लेती है। गतिरोध की इसी स्थिति को तोड़ने के लिए भगतसिंह ने **"क्रान्ति की स्पिरिट ताजा"** करने की बात की थी **"ताकि इंसानियत की रूह में हरकत पैदा हो।"**

भारतीय इतिहास के (और विश्व इतिहास के भी) एक अभूतपूर्व कठिन दौर में इंसानियत की रूह में हरकत पैदा करने के लिए, क्रान्ति की स्पिरिट ताजा करने के लिए भारतीय जन-मुक्ति संघर्ष के महान नायक शहीदे-आजम भगतसिंह के विचारों को आज बार-बार पढ़ने की जरूरत है, इन्हें हर जीवित हृदय तक पहुंचाने की जरूरत है। भगतसिंह और उनके साथियों का अप्रतिम शौर्य और बलिदान नौजवानों को आज भी साम्राज्यवादी-पूंजीवादी अन्याय के विरुद्ध अंतिम सांस तक लड़ने की प्रेरणा देता है। उनके विचार हमें आज भी नई क्रान्ति की दिशा देने में सक्षम हैं। कांग्रेसी नेतृत्व के हाथों में राजनीतिक सत्ता आने के रूप में देश को जो आजादी मिली थी, उसके बाद आधी सदी का समय बीत चुका है। सच्चाई को जानने और फैसला लेने के लिए पचास वर्ष बहुत होते हैं। 1947 का 'दाग-दाग उजाला' आज संगीन अंधेरी रात की शक्ल ले चुका है। जब सिर पर दोपहर का सूरज होना चाहिए था, उस समय यह अंधेरा तो और अधिक आशंकुनकारी है। साम्राज्यवाद और देशी पूंजीवाद के राहु-केतु ने विकास के सूरज को पूरी तरह ग्रस लिया है। पचास साल पहले जो सवाल एक शायर ने पूछा, वो आज पूरे देश की जनता का सवाल है —

'कौन आजाद हुआ
किसके माथे से गुलामी की सियाही छूटी
मेरे सीने में अभी दर्द है महकूमी का
मादरे-हिन्द के चेहरे पे उदासी है वही।'

भगतसिंह को याद करो!
नई क्रान्ति की राह चलो!

सन '47 में मिली आजादी की हकीकत एकदम सामने आ जाने के बाद, देश के हर मेहनतकश को, हर छात्र-युवा को आज यह बताना और अधिक जरूरी लगने लगा है कि शहीदे-आजम भगतसिंह ने राष्ट्रीय आंदोलन के (कांग्रेसी) पूंजीवादी नेतृत्व के बारे में काफी पहले ही आगाह किया था और कहा था कि कांग्रेस की लड़ाई का अंत किसी न किसी समझौते में ही होगा। भगतसिंह और उनके साथियों ने स्पष्टतः और बार-बार अपने बयानों, पर्चों और लेखों में बताया था कि कांग्रेस के नेतृत्व में जो लड़ाई लड़ी जा रही है, उसका लक्ष्य व्यापक जनता की शक्ति का इस्तेमाल करके देशी पूंजीपति वर्ग के लिए सत्ता हासिल करना है, गोरी बुराई की जगह काली बुराई को लाना है, दस फीसदी ऊपर के लोगों की आजादी हासिल करना है। दूसरी ओर उन्होंने साफ-साफ शब्दों में घोषणा की थी कि क्रान्तिकारी आजादी हासिल करने का मतलब 90 फीसदी आम मेहनतकश जनता के लिए आजादी हासिल करना समझते हैं, वे साम्राज्यवाद और सामंतवाद का नाश करने के साथ ही देशी पूंजीवाद का भी खात्मा करना चाहते हैं, उनकी पूरी पूंजी और कारखाने जब्त करके मेहनतकशों के राज्य के हाथों में सौंप देना चाहते हैं, भूमि पर समूची जनता का साझा मालिकाना कायम करना चाहते हैं और एक ऐसा जनतंत्र बहाल करना चाहते हैं जो 90 फीसदी जनता का जनतंत्र हो। स्पष्ट शब्दों में भगतसिंह ने समाजवाद की स्थापना को, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना को अपना लक्ष्य घोषित किया था।

आज जब एक अधूरी, खण्डित आजादी के रूप में साम्राज्यवाद से साठगांठ किये हुए देशी पूंजीवाद के जालिम शासन के जुवे को ढोते-ढोते आधी सदी का समय बीत चुका है, आज जबकि 'इस'

आजादी का वास्तविक रूप उदारीकरण-निजीकरण की आर्थिक नीतियों के दौर में खुलकर सामने आ चुका है, तो 'उस' आजादी को याद करना इस अंधेरे के खिलाफ निर्णायक संघर्ष के लिए बेहद जरूरी है जिसका भगतसिंह ने न सिर्फ सपना देखा था बल्कि उसका एक नक्शा भी सामने रखा था और उसे हासिल करने के रास्ते की भी एक रूपरेखा प्रस्तुत की थी। इसीलिए हम भारतीय नौजवानों का आह्वान करते हैं : **'भगतसिंह को याद करो। नई क्रान्ति की राह चलो।'**

नई क्रान्ति की राह चलने के लिए भगतसिंह के विचारों से, क्रान्तिकारी इतिहास की उस गौरवशाली विरासत से परिचित होना जरूरी है जिसे जन-जन तक पहुंचने से रोकने की हरचंद कोशिश देशी सत्ताधारियों ने हमेशा से की है और यह सच है कि आज देश के अधिकांश युवा नहीं जानते कि **23 वर्ष की छोटी-सी उम्र में फांसी का फंदा चूमने वाला वह जांबाज नौजवान कितना ओजस्वी, प्रखर और दूरदर्शी विचारक था! हमें भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों को भुला देने की साजिश के विरुद्ध संघर्ष करना है। विस्मृति के विरुद्ध हमारा यह संघर्ष ही फिर से हमें सपने देखने की क्षमता देगा, हमारे कल्पनालोक को मुक्त करेगा और हमारे पराजय-बोध को समाप्त करेगा।**

शहीदे आजम भगतसिंह के आदर्श और विचार हमारे लिए आज भी प्रासंगिक हैं, बल्कि पहले हमेशा से अधिक प्रासंगिक हैं। भगतसिंह की स्मृति में नई क्रान्ति की प्रेरणा है और विचारों में उसकी दिशा!

भगतसिंह की वैचारिक विकासयात्रा : वह मशाल जिसे आगे लेकर जाना है!

भगतसिंह और **'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन'** के उनके साथी भारत के क्रान्तिकारी आंदोलन को एक ऐतिहासिक मोड़ देने वाले क्रान्तिकारी थे। यूं तो इनमें **भगवती चरण वोहरा, विजयकुमार सिन्हा, सुखदेव, शिव वर्मा, बटुकेश्वर दत्त** आदि भी गंभीर चिन्तनशील प्रकृति के क्रान्तिकारी थे, पर एक युगप्रवर्तक विचारक के रूप में भगतसिंह का स्थान सबसे आगे था जिन्होंने संगठन और क्रान्तिकारी आंदोलन को एक नई दिशा देने का काम किया।

भगतसिंह और उनके साथियों की राजनीतिक-वैचारिक समझ 1917 की रूसी **सर्वहारा क्रान्ति** के प्रखर रक्तिम आलोक से आलोकित हुई थी। तीसरे दशक के इन युवा क्रान्तिकारियों ने **युगान्तर और अनुशीलन** से लेकर **हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन** तक के मध्यवर्गीय अराजकतावादी क्रान्तिकारी आंदोलन के विकास-क्रम की गहराई से पड़ताल की तथा किसान-मजदूर समुदाय को संगठित करने की महत्ता को क्रमशः ज्यादा से ज्यादा समझना शुरू किया। इस वैचारिक विकास में **गदर पार्टी** के निकट अतीत की भूमिका काफी महत्वपूर्ण थी और साथ ही तीसरे दशक के राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य की भी, जहां एक ओर तो असहयोग आंदोलन की वापसी के बाद कांग्रेसी नेतृत्व विश्रृंखलित हो गया था और दूसरी ओर मजदूर हड़तालों और किसान संघर्षों का अनवरत सिलसिला जारी था। पूरी दुनिया में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी, विशेषकर उनकी युवा पीढ़ी उस समय सोवियत समाजवादी क्रान्ति की उपलब्धियों और विचारों से प्रभावित हो रही थी। भगतसिंह की पीढ़ी भी इसी परिवेश में जी रही थी।

1925-26 के आसपास भगतसिंह, भगवती चरण वोहरा, सुखदेव आदि लाहौर में सक्रिय युवा क्रान्तिकारियों की पीढ़ी रूसी अराजकतावादी **बाकुनिन** से प्रभावित थे। **कामरेड सोहन सिंह जोश** और **लाला छबीलदास** से लगातार सम्पर्क-संवाद और गहन अध्ययन के परिणामस्वरूप भगतसिंह और उनके साथी 1928 तक समाजवाद को अपना लक्ष्य मानने लगे थे। सोवियत व्यवस्था और सर्वहारा शासन की स्थापना की बातें भी वे करने लगे थे, हालांकि इसकी पूरी प्रक्रिया और स्वरूप से वे परिचित नहीं थे तथा किसानों-मजदूरों को संगठित करने का विरोध न करते हुए भी उनका मुख्य जोर गुप्त तैयारियों व सशस्त्र कार्रवाइयों के लिए नौजवानों के ग्रुप तैयार करने पर ही था। उधर कानपुर में सक्रिय क्रान्तिकारी भी **राधामोहन गोकुलजी, सत्यभक्त** और **हसरत मोहानी** के प्रभाव से मार्क्सवाद के भावनात्मक प्रभाव में आये, हालांकि उसकी कोई सुसंगत समझ अभी उनकी नहीं बन सकी थी।

अप्रैल 1928 में लाहौर में **नौजवान भारत सभा** की एक जन संगठन के रूप में स्थापना क्रान्तिकारी आंदोलन की रणनीति में एक महत्वपूर्ण बदलाव का सूचक था। सितम्बर, 1928 में बिखरे हुए क्रान्तिकारी आंदोलन को देश स्तर पर पुनर्गठित करने के उद्देश्य से **'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन'** (एच.एस.आर.ए) का गठन हुआ। भगतसिंह और उनके साथियों के इस समय तक के वैचारिक विकास को विशेष तौर पर नौजवान भारत सभा, लाहौर के घोषणा-पत्र और एच.एस.आर.ए. के घोषणापत्र में देखा जा सकता है।

एच.एस.आर.ए. ने समाजवाद को सिद्धान्त के रूप में और समाजवादी समाज की स्थापना को अंतिम उद्देश्य के रूप में स्वीकार तो किया, पर उसकी रणनीति और कार्यप्रणाली अभी भी व्यक्तिवादी दुःस्साहसवादी ही थी। किसानों-मजदूरों, मध्यम वर्ग के लोगों के जनसंगठन बनाने पर और जन कार्रवाइयों पर जोर नहीं था।

फिर भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि **एच.एस.आर.ए. के क्रान्तिकारी न केवल यह मानते थे कि राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष का लक्ष्य समाजवाद की स्थापना होनी चाहिए, बल्कि वे पूरे साम्राज्यवादी विश्व में एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण के भी विरोधी थे और अपनी लड़ाई सिर्फ ब्रिटिश उपनिवेशवाद से नहीं बल्कि साम्राज्यवाद की विश्व व्यवस्था से मानते थे। सोवियत संघ को वे आदर्श मानते थ और भारत में भी सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना को अपना लक्ष्य मानते थे। भाषाई-धार्मिक-जातिगत संकीर्णता के विरुद्ध संघर्ष में उनका रुख एकदम समझौताविहीन था। वैचारिक तौर पर वे धर्म, रहस्यवाद और भाग्यवाद की दिमागी गुलामी से छुटकारा पा चुके थे। और सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस दौर में भी भगतसिंह और उनके साथी इस बात को समझने लगे थे कि कांग्रेस के झण्डे तले गांधी जी ने व्यापक जनता के एक बड़े हिस्से को भले ही जुटा लिया हो, पर कांग्रेस उनके हितों की नुमाइन्दगी नहीं करती, बल्कि देशी धनिक वर्गों के हितों की नुमाइन्दगी करती है और यह कि कांग्रेस की लड़ाई का अंत किसी न किसी समझौते के रूप में ही होगा।**

असेम्बली बम काण्ड के बाद, 1929 के मध्य तक एच.एस.आर.ए. के अधिकांश

प्रमुख नेता जेलों में बंद कर दिये गये थे। जेल में इन क्रान्तिकारियों ने न केवल अपने और पूरे क्रान्तिकारी आंदोलन के अनुभवों पर गहन विचार-विमर्श और सिंहावलोकन किया, बल्कि हमदर्दों की सहायता से बाहर से जुटाकर भीतर पहुंचाये गये मार्क्सवादी और अन्य क्रान्तिकारी साहित्य का गहन अध्ययन किया। **1929-30 के दो वर्षों का समय एच.एस. आर.ए. के क्रान्तिकारियों और भगतसिंह के वैचारिक विकास का सबसे अहम दौर था।** इस दौरान भगतसिंह ने मार्क्सवादी दर्शन का और दुनिया के क्रान्तिकारी साहित्य का कितना गहन अध्ययन किया, **इसका प्रमाण उनकी दुर्लभ जेल नोटबुक के सामने आने के बाद मिल चुका है** (यह नोटबुक अंग्रेजी में जयपुर से प्रकाशित हो चुकी है और हिन्दी में इसका प्रकाशन जल्दी ही परिकल्पना, लखनऊ द्वारा होने वाला है)। उक्त नोटबुक में **रूसो, टॉमस पेन, जैफरसन, पैट्रिक हेनरी, अप्टन सिंक्लेयर, बर्ट्रेण्ड रसल, क्रोपाटकिन, बाकुनिन** आदि के विचारों को नोट करने के साथ ही **मार्क्स-एंगेल्स** की **'पूंजी', 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र', 'परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्यसत्ता की उत्पत्ति', 'हेगेल के न्याय दर्शन की समालोचना का प्रयास', 'जर्मनी में क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति'** आदि रचनाओं से, लेनिन की **'राज्य और क्रान्ति', 'सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार काउत्स्की'** जैसी रचनाओं से तथा **त्रात्स्की** और **बुखारिन** की कृतियों से भी कई उद्धरण दर्ज किये गये हैं। इसके अतिरिक्त मार्क्सवादी विचारधारा और अन्य दार्शनिक विचारों की कई पुस्तकों तथा रूसी क्रान्ति, सोवियत समाजवाद व बोल्शेविज्म के इतिहास की कई पुस्तकों के हवाले से भगतसिंह ने अपनी नोटबुक में टिप्पणियां दर्ज की हैं।

अध्ययन और साथियों से लम्बे विचार-विमर्श के बाद, बोर्स्टल जेल में रहते समय भगतसिंह इस नतीजे पर मुकम्मिल तौर पर पहुंच चुके थे कि मुट्ठी भर बहादुर नौजवानों के गुप्त संगठन, उनकी कुर्बानियों और कुछ तोड़ फोड़ तथा जालिम अफसरों-जासूसों की हत्या से जनता में जागृति आ जायेगी, वह उठ खड़ी होगी और आजादी मिल जायेगी—यह संभव नहीं है। औपनिवेशिक सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए शस्त्र बल की जरूरत होगी, पर इस शस्त्र बल का इस्तेमाल व्यापक जनता करेगी। इसके लिए किसानों-मजदूरों सहित व्यापक जनता को पहले जगाना होगा और उनके व्यापक जन संगठन खड़े करने होंगे। जनता के इन संगठनों को दिशा और नेतृत्व देने का काम तपे-तपाये क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं की संगठित गुप्त टीम करेगी और वही नेतृत्वकारी क्रान्तिकारी पार्टी होगी।

भगतसिंह के ये विचार अपने सर्वाधिक विकसित रूप में फरवरी 1931 के उनके अन्तिम महत्वपूर्ण दस्तावेज **'क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसौदा'** में देखने को मिलते हैं जिसका एक हिस्सा छापकर बांटने के लिए **'नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम पत्र'** के रूप में लिखा गया है और दूसरा हिस्सा क्रान्तिकारी साथियों के बीच विचार-विमर्श के लिए प्रस्तुत मसौदे के रूप में। इसके पहले के 1929-30 के पत्रों-वक्तव्यों में भी भगतसिंह की विचारयात्रा के महत्वपूर्ण मुकामों की शिनाख्त की जा सकती है।

19 अक्टूबर 1929 को पंजाब छात्र संघ, लाहौर के दूसरे अधिवेशन को भेजे गये अपने संदेश में भगतसिंह ने लिखा था : **"इस समय हम नौजवानों से यह नहीं कह सकते कि वे बम और पिस्तौल उठायें। आज विद्यार्थियों के सामने इससे भी महत्वपूर्ण काम है।... नौजवानों को क्रान्ति का यह संदेश देश के कोने-कोने में पहुंचाना है, फैक्टरी-कारखानों के क्षेत्रों में, गंदी बस्तियों और गांवों की जर्जर झोंपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख जगानी है जिससे आजादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा।"**

फरवरी 1931 के ऊपर उल्लिखित अपने ऐतिहासिक मसौदा दस्तावेज में भगतसिंह ने स्पष्ट कहा था कि **"आतंकवाद हमारे समाज में क्रान्तिकारी चिन्तन के पकड़ के अभाव की अभिव्यक्ति है; या एक पछतावा। इसीतरह यह अपनी असफलता का स्वीकार भी है।... आतंकवाद अधिक से अधिक साम्राज्यवादी ताकत को समझौते के लिए मजबूर कर सकता है। ऐसे समझौते, हमारे उद्देश्य —पूर्ण आजादी से हमेशा ही कहीं दूर रहेंगे। इस प्रकार आतंकवाद, एक समझौता, सुधारों की एक किश्त निचोड़कर निकाल सकता है और इसे ही हासिल करने के लिए गांधीवाद जोर लगा रहा है। वह चाहता है कि दिल्ली का शासन गोरे हाथों से भूरे हाथों में आ जाये। यह लोगों के जीवन से दूर हैं और इनके गद्दी पर बैठते ही जालिम बन जाने की बहुत सम्भावनाएं हैं।"**

भगतसिंह ने आतंकवाद की सीमाओं और गांधीवाद के असली चरित्र को पहचानने के साथ ही यह भी स्पष्ट कहा कि **"गांवों और कारखानों में किसान और मजदूर ही असली क्रान्तिकारी सैनिक हैं।"** उनके अनुसार, **"क्रान्ति राष्ट्रीय हो या समाजवादी, जिन शक्तियों पर हम निर्भर हो सकते हैं, वे हैं किसान और मजदूर।"**

भगतसिंह ने स्पष्ट कहा कि कांग्रेस के 'बुर्जुआ' नेता किसानों-मजदूरों को उनके वास्तविक लक्ष्य के लिए संगठित कर ही नहीं सकते, हां, उन्हें बरगलाकर इस्तेमाल अवश्य कर सकते हैं। उन्होंने इसी दस्तावेज में युवा राजनीतिक कार्यकर्ताओं को सलाह दी है कि वे मार्क्स और लेनिन का अध्ययन करें, उनकी शिक्षा को अपना मार्गदर्शक बनायें, जनता के बीच जायें, मजदूरों-किसानों और शिक्षित मध्यवर्गीय नौजवानों के बीच काम करें, उन्हें राजनीतिक दृष्टि से शिक्षित करें, उनमें वर्ग-चेतना उत्पन्न करें, उन्हें यूनियनों में संगठित करें, आदि। साथ ही, लेनिन को उद्धृत करते हुए उन्होंने एक ऐसी क्रान्तिकारी पार्टी की (जिसका नाम उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी रखने का सुझाव दिया है) जरूरत पर बल दिया है जो मुख्यतः पेशेवर क्रान्तिकारी—ऐसे पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं पर निर्भर हो जिनकी क्रान्ति के सिवा न कोई आकांक्षा हो, न ही जीवन का दूसरा कोई लक्ष्य।

उक्त दस्तावेज में भगतसिंह ने क्रान्ति का जो कार्यक्रम प्रस्तुत किया है वह साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने के बाद सामंतवाद की समाप्ति तक ही सीमित न रहकर सर्वहारा राज्य के अन्तर्गत कारखानों और भूमि के राष्ट्रीकरण तथा आवास-शिक्षा आदि की गारण्टी का समाजवादी कार्यक्रम है।

एक सपना जो पूरा न हो सका !

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी, जो भगतसिंह की शहादत के पहले अस्तित्व में आ चुकी थी, व्यापक मेहनतकश अवाम को संगठित करके उनके सपनों को पूरा कर सकती थी। लेकिन उसकी वैचारिक और सांगठनिक कमजोरी तथा नेतृत्व के बड़े हिस्से के

अवसरवादी होने के कारण ऐसा नहीं हो सका। 1945-46 में पूरे विश्व के करवट बदलने के साथ ही भारत भी उठ खड़ा हुआ था। नौसेना की ऐतिहासिक बगावत के बाद थल सेना और वायुसेना में भी विद्रोह की स्थितियां उत्पन्न हो चुकी थीं। मजदूरों की हड़तालों का अनवरत सिलसिला जारी था और छात्र-युवा भी संघर्ष की अगली कतारों में थे। **तेलंगाना, तेभागा** और **पुनप्रा-वायलार** के किसान-संघर्ष जंगल की आग की तरह फैल रहे थे। इस शानदार स्थिति का भी यहां की कम्युनिस्ट पार्टी लाभ न उठा सकी। क्रान्ति के अधूरे प्रयास विफल हो गये। पीछे हटने को बाध्य उपनिवेशवादी जाते-जाते वही कर गये जिसका अंदेशा था। राजनीतिक सत्ता वे भारतीय पूंजीपति वर्ग की पार्टी कांग्रेस के हाथों में सौंप गये।

1951 में तेलंगाना की पराजय के बाद यहां की कम्युनिस्ट पार्टी पूरी तरह संसदमार्गी होकर पूंजीवादी सत्ता की ही एक सुरक्षा-पंक्ति बनकर रह गई और भगतसिंह के विचारों एवं सपनों का वारिस बन पाने का हक पूरी तरह खो बैठी।

1967 में **नक्सलबाड़ी** के किसान उभार से जो नई शुरुआत हुई, वह जल्दी ही आतंकवाद की उसी गलती का शिकार हो गई, जिसकी आलोचना भगतसिंह ने भी अपने अंतिम दिनों में की थी। इस धारा के सर्वहारा क्रान्तिकारी अपनी विचारधारात्मक कमजोरियों के चलते देश की नई परिस्थितियों को भी समझने में असफल रहे। क्रान्तिकारी इतिहास का यह दौर भी अब बीत चुका है। अब एक नया दौर शुरू हो चुका है। आज आर्थिक नव उपनिवेशवाद के नये दौर की नई क्रान्ति के लिए बिखरी हुई क्रान्तिकारी शक्तियों को एकजुट करने का क्रान्तिकारी कतारों में छात्रों-युवाओं के बीच से नई भरती करने का तथा किसानों-मजदूरों को संगठित करते हुए उनके भीतर से भी क्रान्तिकारी नेतृत्व पैदा करने का कार्यभार हमारे सामने है। एक बार फिर देश स्तर पर क्रान्तिकारी संगठन बनाना होगा जिसके कार्यकर्ता साम्राज्यवाद-पूंजीवाद विरोधी नई क्रान्तियों के हिरावल होंगे। आज की परिस्थितियों में भगतसिंह के सपने को पूरा करने का रास्ता यही होगा, क्योंकि इतिहास वहीं रुका हुआ क्रान्ति की प्रतीक्षा नहीं कर रहा है जहां वह भगतसिंह की शहादत के समय, 1931 में था।

'47 का ऐतिहासिक छल और आधी सदी का अंधेरा

आज उस आजादी के बाद पचास वर्षों का समय बीत चुका है, जो हमें कांग्रेस के नेतृत्व में मिली।

पचास वर्षों के भीतर देशी पूंजीवादी सत्ता की गोलियों ने उससे अधिक जनता का खून बहाया है, जितना दो सौ वर्षों के दौरान अंग्रेजों ने बहाया था। कहने को जनतंत्र है, पर अन्यायी सत्ता के विरुद्ध उठने वाली हर आवाज को, हर आन्दोलन को कुचल देने के लिए न तो नये-नये काले कानूनों की कमी है, न जेलों, पुलिस और फौज की। दमनकारी तंत्र अंग्रेजों के समय से अधिक संगठित, मजबूत और आधुनिक है। साथ ही, पुराने औपनिवेशिक कानून भी आजतक मौजूद हैं। प्रतिदिन देश के किसी न किसी कोने में छात्रों, मजदूरों या किसानों पर गोलियां चल रही हैं।

पूर्वोत्तर भारत और कश्मीर की जनता गत आधी सदी से फौजी संगीनों के साये तले जी रही है। अरबों-खरबों के घोटाले, घटिया बुर्जुआ जातिवादी और कट्टरपंथी धार्मिक राजनीति के हथकण्डे, साम्प्रदायिक दंगे, दलित उत्पीड़न, नारी उत्पीड़न का लगातार बढ़ता घटाटोप—यही है आजादी के पचास वर्षों बाद का राजनीतिक-सामाजिक परिदृश्य।

15 अगस्त 1947 को भारत न सिर्फ विदेशी कर्जे से पूरी तरह मुक्त था, बल्कि उल्टे ब्रिटेन पर भारत का 16.62 करोड़ रुपये का कर्ज था। आज देश पर कुल 50 खरब रुपये का विदेशी कर्ज लदा है जो भारत सरकार की कुल सम्पत्ति के लगभग बराबर है। 1948-49 में भारत का साम्राज्यवादी शोषण 20 करोड़ रुपये था जो 1995-96 तक बढ़कर 3 खरब रुपये हो चुका था। पिछले पचास वर्षों के दौरान ऊपर के करीब सौ बड़े पूंजीपति घरानों की पूंजी में दो गुने-चौगुने की नहीं बल्कि दो सौ गुने से लेकर चार सौ गुने तक की बढ़ोत्तरी हुई है जबकि दूसरी ओर आधी आबादी को शिक्षा और दवा-इलाज तो दूर, भरपेट भोजन भी मयस्सर नहीं है।

1947 में देश को जो अधूरी और विकलांग आजादी मिली, उसका पूरा फायदा सिर्फ ऊपर की बीस फीसदी धनिक आबादी को ही मिला है जो पूंजीपतियों की चाकरी बजाती है और साम्राज्यवादियों के तलवे चाटने के लिए तैयार है।

1947 में सत्तासीन होने के बाद भारत के पूंजीपतियों ने साम्राज्यवादी ताकतों के छुटभैये की स्थिति को स्वीकार करके पूंजीवादी विकास का रास्ता चुना। ब्रिटेन की जगह देश सभी साम्राज्यवादी ताकतों का चरागाह बन गया। शासक वर्ग इस या उस साम्राज्यवादी ताकत से मोल तोल करके तकनोलाजी और पूंजी लेता रहा तथा उन्हें लूटने का अवसर देकर खुद भी लूटता रहा। समाजवाद का नारा देकर 'पब्लिक सेक्टर' खड़ा किया गया ताकि जनता को निचोड़कर पूंजी जुटाई जा सके। गांवों में सामंतों की जमीन छीनने की जगह उन्हें यह अवसर दिया गया कि वे पूंजीवादी भूस्वामी बन जायें। साथ ही पहले के धनी काश्तकार भी खेतों के मालिक होकर मुनाफाखोर कुलक बन गये। मध्यम और छोटे किसान पूंजी की मार से उजड़कर सर्वहारा की कतारों में शामिल होते चले गये।

चालीस साल बीतते-बीतते पब्लिक सेक्टर का पूंजीवाद बोझ बन गया। जनता की गाढ़ी कमाई से खड़े किये गये उद्योगों को निजी पूंजीपतियों के हाथों में सौंपा जाने लगा। निजीकरण की इस नीति के साथ ही, उदारीकरण के नाम पर विदेशी लूट के लिए भी अर्थव्यवस्था के दरवाजों को पूरी तरह खोल दिया गया। वर्तमान दशक के शुरू से कांग्रेस से लेकर संयुक्त मोर्चा सरकार ने इन्हीं नीतियों को लागू किया है और अब भाजपा की सरकार हो या कोई भी और सरकार आये—आर्थिक नीतियों में कोई बदलाव नहीं आने वाला, क्योंकि यह रास्ता पूंजीवाद के पास एकमात्र विकल्प है, देश स्तर पर भी और विश्व स्तर पर भी।

और यह आखिरी विकल्प भी पूंजीवाद के संकट को घटाने के बजाय लगातार बढ़ाता ही जा रहा है। तीसरी दुनिया के तमाम देशों की तरह भारत भी आज एक ज्वालामुखी के दहाने पर बैठा हुआ है। यही नहीं, बढ़ते संकट के चलते जन आंदोलनों का ज्वार अब पश्चिमी देशों की सड़कों पर भी उमड़ने लगा है।

भारत में बेरोजगारों की संख्या इस समय 20 करोड़ है जो इस सदी के अंत तक इससे दूनी हो जायेगी। उदारीकरण-निजीकरण की नीतियां लागू होने के बाद तीन लाख छोटे-बड़े उद्योग बंद हो चुके हैं और करोड़ों मजदूर बेकार हो चुके हैं। देश की आजादी की असलियत तो काफी पहले ही सामने आ

चुकी थी, अब इसका सबसे नंगा और सबसे गंदा रूप हमारे सामने है।

वह जलता हुआ प्रश्न जो हमारी आंखों में झांक रहा है!

एक नई क्रान्ति का प्रबल झंझावात ही इस नर्क से हमें उबार सकता है। इसके लिए, जैसा कि भगतसिंह ने जेल की कालकोठरी से संदेश दिया था, नौजवानों को आगे आना होगा और क्रान्ति की स्पिरिट को ताजा करने के लिए कुर्बानी की भावना से ओतप्रोत होकर आना होगा। उन्हें "क्रान्ति की तलवार विचारों की सान पर तेज" करनी होगी, यानी आज की परिस्थितियों का, साम्राज्यवाद और पूंजीवाद का अध्ययन करना होगा, क्रान्ति के विज्ञान का अध्ययन करना होगा और इतिहास का भी। फिर उन्हें कारखानों और गांवों तक क्रान्ति का संदेश लेकर जाना होगा और जनता को संगठित करना होगा।

फांसी से तीन दिन पहले भगतसिंह ने लिखा था : "**हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तबतक चलती रहेगी जबतक कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार कर रखा है—चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूंजीपति और अंग्रेज या सर्वथा भारतीय ही हों, उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है।**"

यही संदेश आज एक-एक जीवित हृदय तक पहुंचाना है कि यह लड़ाई आज भी जारी है और यह आज एक ऐसे मुकाम पर पहुंच चुकी है जब पूंजीवादी सत्ता पर फैसलाकुन चोट की जा सकती है।

पर कोई भी सामाजिक क्रान्ति अपने-आप सम्पन्न नहीं होती। निश्चित, सचेतन तैयारी के बिना बीच-बीच में विद्रोह तो होते रह सकते हैं, पर ऐसी क्रान्ति नहीं हो सकती जो नई सामाजिक व्यवस्था के जन्म में धाय का काम करती है।

शहीदे-आजम भगतसिंह ने जिस आजादी का सपना देखा था, उसे पूरा करने के लिए उन्होंने फांसी की कालकोठरी से युवाओं का आह्वान किया था। पूंजीवादी शासन के रूप में मिली अधूरी, खण्डित, विकलांग आजादी की आधी सदी के दुखदाई सफरनामे के बाद भी क्या नौजवानों की यह पीढ़ी उस सपने को यथार्थ में बदलने के लिए तैयार नहीं है? —यह जलता हुआ प्रश्न आज हमारी आंखों में झांक रहा है।

सपने अपनेआप पूरे नहीं होते। उन्हें सिर्फ पालने से भी कुछ नहीं होता। सपनों से सिर्फ शुरुआत होती है। सपने अंत नहीं। आने वाले दिनों के ऐतिहासिक तूफान को एक निश्चित दिशा देकर सामाजिक क्रान्ति में रूपान्तरित करने के लिए हमें आज ही से तैयारियों में जुट जाना होगा।

"एक सपने को टालते रहने से
क्या होता है ?
क्या वह सूख जाता है
किशमिश सा धूप में ?
या जख्म सा पक जाता है
और फिर रिसा करता है ?
.....
मुमकिन है वह सिर्फ लच जाता हो
भारी बोझे जैसा।
कहीं वह बारूद-सा फट तो नहीं पड़ता ?"
(लैंग्स्टन ह्यूज)

● सत्यम वर्मा

भगतसिंह के लेखों के संकलन **'विचारों की सान पर'** का सम्पादकीय

अगर आपकी जीन्स बोल सकती...

(पृष्ठ 41 का शेष)

पर भरोसा न हो तो दिल्ली के गोविन्दपुरी और नोएडा के एनईपीजेड में जाकर खुद अपनी आंखों से देख सकते हैं। हर औद्योगिक क्षेत्र हजारों बचपनों, अनगिनत सपनों-उम्मीदों की कत्लगाह है। देश की बर्बर सत्ता एक ओर तो बाल मजदूरों की दुर्दशा पर आंसू बहाती है और दूसरी ओर फ्लाइंग मशीन, ली, हैगर, गैप, किलर और वांटेड जैसे देशी-विदेशी भेड़ियों को बच्चों के सस्ते श्रम की लूट-खसोट की छूट देने के लिए 'फ्री ट्रेड जोन' और 'एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन' बनवा रही है।

यह सवाल बरबस ही दिमाग में उठता है कि इस लुटेरे तंत्र को खत्म किये बिना क्या "बचपन बचाया" जा सकता है?

मुनाफे की हवस में पागल इन वहशियों को किसी भी तरह सस्ता श्रम चाहिए। और इसके लिए वे तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों में आते हैं जहां की सरकारें बच्चों, औरतों और बदहाल, मजबूर मजदूरों के शरीर से एक-एक बूंद खून निचोड़ लेने में उनकी मदद के लिए सबकुछ करने को तत्पर रहती हैं। और फिर बेशर्मी भरे गर्व से दावा करती हैं कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियां रोजगार के अवसर बढ़ा रही हैं।

इन गारमेंट फैक्टरियों की यह एक झलक भर है जो रोंगटे खड़े कर देती है। अगर वाकई हमारे कपड़ों के पास जुबान होती तो काम करने के भयावह हालात, भुखमरी-कुपोषण-बीमारी से भरी जीवन स्थितियों, बालश्रम के क्रूर शोषण, गुलामों जैसे व्यवहार और मुनाफे की हवस तले रौंदे जा रहे बचपनों की कहानी सुनाते।

वे हमें बताते कि "मुक्त व्यापार" का हम तीसरी दुनिया में रहने वाले आम जनता के बेटे-बेटियों और पूरी दुनिया के मजदूरों के लिए क्या मतलब है? ●

मुनाफाखोरों के लिए मजदूरों का श्रम ही नहीं, जान भी सस्ती है

तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों में बहुराष्ट्रीय वस्त्र कम्पनियों के लिए महंगे से महंगे कपड़े तैयार करने वाले मजदूरों का श्रम ही नहीं, उनकी जान भी बेहद सस्ती है।

पिछले दिनों बंगलादेश में एक गारमेंट फैक्ट्री में लगी भीषण आग में करीब 100 मजदूर जिंदा जल मरे। इनमें आधी से ज्यादा महिलाएं थीं। 200 से अधिक मजदूर जलने से घायल हुए। एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी के लिए विन्टवीयर तैयार करने वाली इस फैक्ट्री में रात की पाली में 700-800 मजदूर काम करते थे। मालिक रोज रात को ढोर-डांगर की तरह उन्हें भीतर बंद कर बाहर से ताला लगा कर जाता था। आग की लपटों में घिरे मजदूरों के लिए बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं था। वे तड़पते रहे, चीखते रहे, पर कोई उनकी आवाज सुनने वाला भी नहीं था। बहुत से मजदूरों की दम घुटने से मौत हो गई।

इससे कुछ ही महीने पहले ढाका में एक और गारमेंट फैक्ट्री की आग में 12 मजदूर मारे गये थे।

यहीं इस भयानक सच्चाई की भी याद दिला देनी चाहिए कि 26 जनवरी को गुजरात में आये भूकम्प के समय धनपतियों के लिए हीरे तराशने वाले न जाने कितने कारीगर इसलिए नहीं बच सके क्योंकि वे जिन वर्कशापों में काम करते थे उनके दरवाजों पर रात को मालिक लोग बाहर से ताला लगा देते थे।